पेंशन ख़ैरात नहीं, मूल अधिकार है!

मानव

भारतीय राजनीति में इन दिनों पुरानी पेंशन योजना की बहाली का मुद्दा छाया हुआ है। हिमाचल प्रदेश में नई बनी कांग्रेस सरकार द्वारा इसकी बहाली की घोषणा और पंजाब, छत्तीसगढ़, राजस्थान और झारखंड की ग़ैर-भाजपा सरकारों द्वारा इसके हक़ में लिए गए फ़ैसले ने इस मुद्दे को चर्चा का विषय बना दिया है और इसकी मांग उठ रही है कि मोदी सरकार केंद्रीय कर्मचारियों के लिए भी इस योजना को बहाल करे। दबाव में आकर केंद्र सरकार के मंत्री, सलाहकार और कई सत्तारूढ़ मीडिया के कलमनवीस पुरानी पेंशन योजना के ख़िलाफ़ ज़ोर-शोर से प्रचार कर रहे हैं।

क्या है पुरानी और नई पेंशन योजना?

पुरानी पेंशन योजना के मुताबिक़ पेंशन सरकारी कर्मचारी के अंतिम हासिल वेतन का 50 प्रतिशत हुआ करती थी और इस पेंशन पर टैक्स नहीं लगता था। महंगाई बढ़ने के साथ-साथ यह महंगाई भत्ते की तरह बढ़ती जाती थी। इसकी ज़िम्मेदारी पूरी तरह से सरकार पर थी। इस पर होने वाले ख़र्च को कम करने के लिए एक नई पेंशन योजना लाई गई, जो कर्मचारियों को पक्ष बनाकर उन्हें दी जाने वाली पेंशन है, जिसमें कर्मचारी अपनी पूरी नौकरी के दौरान अपने वेतन का एक हिस्सा पेंशन फ़ंड में जमा करते हैं। एक हिस्सा दूसरा पक्ष (सरकार या कंपनी) जमा करवाता है। यह सारी राशि अलग-अलग तरीक़ों से शेयर बाज़ार में निवेश की जाती है और कर्मचारी के रिटायर होने के समय पर इस निवेश की गई संपत्ति की जो बाज़ार की क़ीमत होती है, उतनी ही राशि का कर्मचारी हक़दार होता है। यही कारण है कि कर्मचारियों के लिए पुरानी पेंशन योजना नई से बेहतर थी, इसलिए इसे बहाल करने की मांग उठती रहती है।

पुरानी पेंशन योजना को बंद करने की कोशिश तो वाजपेयी सरकार के दौरान ही शुरू हो गई थी, लेकिन जनता के दबाव के कारण सरकार इसे लागू नहीं कर पाई। बाद में 2004 में कांग्रेस के नेतृत्व वाली गठबंधन सरकार ने इसे लागू किया। केंद्र में इसके लागू होने के बाद विभिन्न राज्यों में कांग्रेस की सरकारों ने भी इसे लागू किया और अगले 7-8 सालों में बंगाल को छोड़कर लगभग सभी राज्यों ने इसे लागू कर दिया।

पुरानी पेंशन योजना के ख़िलाफ़ दी जा रहीं दलीलें

पुरानी पेंशन योजना के ख़िलाफ़ इस समय लिखे जा रहे लेखों और बयानों में एक बात समान है कि कैसे यह योजना "राज्यों के पैसे की बर्बादी का सबब बनेगी", कैसे यह योजना "ख़राब राजनीति और ख़राब अर्थशास्त्र का नतीजा है", कि कैसे पेंशन "सुधारों" को उल्टी दिशा देना, पूरी तरह से ग़लत फ़ैसला होगा। योजना आयोग के पूर्व प्रमुख मोंटेक सिंह आहलूवालिया ने 6 जनवरी को इस मुद्दे पर अपनी बात रखते हुए कहा कि यह योजना "वित्तीय दिवालियापन" का ज़रिया है। उल्लेखनीय है कि आहलूवालिया 2004 में योजना आयोग का उपाध्यक्ष था, जब नई पेंशन योजना लागू की गई थी। इसी तरह 15वें वित्तीय आयोग के अध्यक्ष एन.के. सिंह ने कहा कि पुरानी पेंशन योजना की तरफ़ वापिस जाना राज्यों के लिए आर्थिक रूप से घातक होगा।

पुरानी पेंशन योजना को समाप्त करते समय भी यही दलील दी गई थी कि यह सरकारों पर भारी वित्तीय बोझ है। स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार के कारण औसत आयु में वृद्धि के कारण सरकारों ने दलील दी कि पेंशन की लागत लगातार बढ़ रही है, लेकिन सरकारों की आमदनी उस तरह से नहीं बढ़ रही है। इस कारण सभी को पेंशन देना संभव नहीं है। लेकिन तथ्यों के आधार पर यह दलील सही साबित नहीं होती।

सबसे पहले एक औंकड़ा पेश किया जाता है कि पुरानी पेंशन योजना राज्य सरकारों के बजट का 25 प्रतिशत तक होती है, जो कुछ राज्यों के मामले में 50 प्रतिशत से भी ऊपर चला जाता है। लेकिन यह गुमराह करने वाला आंकड़ा है। यह आंकड़ा पेश करते हुए इसमें सरकार की आमदनी के तीन अन्य हिस्से शामिल नहीं हैं। पहला राज्यों के हिस्से का केंद्र सरकार द्वारा इकट्ठा किया टैक्स। दूसरा राज्यों की ग़ैर-टैक्स आमदनी और तीसरा ग़ैर-टैक्स ग्रांट, जो केंद्र सरकार ने राज्यों को देनी होती है। इन आंकड़ों को जोड़ने पर, हम देखते हैं कि पुरानी पेंशन योजना का हिस्सा बजट के औसतन 25 प्रतिशत से घटकर आधे से भी कम रह जाता है। कुल घरेलू उत्पादन के प्रतिशत के तौर पर देखा जाए तो साल 2021-22 में केंद्र सरकार के 70 लाख पेंशन लेने वालों पर करीब ढाई लाख करोड़ रुपए ख़र्च किए गए। वर्ष 2020-21 में भारत का सकल घरेलू उत्पाद (मौजूदा क़ीमतों पर) 197 लाख करोड़ था, जबकि केंद्र सरकार के कर्मचारियों की पेंशन इस औंकड़े का केवल 1.26 प्रतिशत ही बनती है। इटली में यह हिस्सा 15 प्रतिशत, फ्रांस, जर्मनी में 12 प्रतिशत और जापान में 9 प्रतिशत तक है। अगर एक तरफ़ मोदी सरकार भारत को दुनिया की पांचवीं सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति बनाने की डींग हाँक रही है, तो अपने नागरिकों को सुविधाएँ देने में इतनी पीछे क्यों है? जैसे-जैसे राज्य और केंद्र सरकार की आमदनी बढ़ेगी, पेंशन लागत का हिस्सा और घटेगा। इसलिए यहाँ मूल प्रश्न यह उठता है कि सरकारें अपनी आमदनी बढ़ाने की कोई योजना बनाने के बजाय पहले से ही नाममात्र की जन कल्याणकारी योजनाओं को बंद करने पर क्यों तुली हैं?

जी-20 देशों के समूह में भारत टैक्स इकट्ठा करने के मामले में सबसे निचले पायदान पर है। और इससे भी बुरी बात यह है कि इकट्ठा किए गए टैक्स का एक बड़ा हिस्सा अप्रत्यक्ष कर है, जिसका बोझ आम लोगों पर पड़ता है। भारत में बड़े पूँजीपतियों पर आमदनी कर कई विकसित देशों की तुलना में कम है और संपत्ति कर तो है ही नहीं। यदि भारत में 50 करोड़ से अधिक आमदनी वालों पर केवल 2 प्रतिशत से शुरू करके, 500 करोड़ से अधिक आमदनी वालों पर 5 प्रतिशत और फिर शीर्ष अमीरों पर 10 प्रतिशत तक संपत्ति टैक्स लागू किया जाता है, तो सरकार के पास कम से कम 9 लाख करोड़ का राजस्व सालाना जमा हो सकता है। इससे ना केवल मौजूदा पेंशन योजना के लिए ज़रूरी ढाई लाख करोड़ की राशि मिलती है, बल्कि इस योजना का दायरा बहुत अधिक बढ़ाया जा सकता है और अन्य जन कल्याणकारी योजनाओं के लिए इससे राशि इकट्ठा की जा सकती है।

अगर राज्य सरकारों की आमदनी पर पड़ने वाले बोझ की बात की जाए तो इसे केंद्र और राज्य सरकारों के मौजूदा असहज संबंधों के बिना नहीं समझा जा सकता है। पुरानी पेंशन योजना के लागू होने से राज्य सरकारों पर बढ़ते बोझ की बात करें, तो कभी भी यह नहीं बताया जाता कि केंद्र सरकार राज्यों की आमदनी पर लगातार बंदिशें लगा रही है।

राज्यों के साथ टैक्स से प्राप्त आमदनी को साझा करने से बचने के लिए केंद्र सेस (विशेष टैक्स) और सरचार्ज (अतिरिक्त टैक्स) का हिस्सा लगातार बढ़ाता रहा है, जिसे राज्यों के साथ साझा करने की ज़रूरत नहीं। केंद्र सरकार के कुल टैक्स राजस्व में सेस और सरचार्ज की हिस्सेदारी 2011-12 में 10.4 प्रतिशत से बढ़कर 2021-22 में 26.7 प्रतिशत हो गई है। यह राज्य सरकारों की आमदनी पर एक बड़ा डाका है। दूसरा, जीएसटी प्रणाली ने राज्य सरकारों की आमदनी को और कम कर दिया है और घाटे को पूरा करने के अपने वादों से केंद्र सरकार अक्सर मुकरती रही है। इन दो क़दमों के बिना राज्य सरकारों पर आर्थिक सामर्थ्य से बाहर ख़र्च करने पर क़ानूनी पाबंदी है, जबकि केंद्र सरकार पर ऐसी कोई शर्त नहीं है। इन सभी क़दमों ने राज्य सरकारों के वित्तीय ढाँचे को हिलाकर रख दिया है। पुरानी पेंशन योजना के विरोधी केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों के वित्तीय स्रोतों पर लगातार हो रहे इस डाके पर पूरी तरह खामोश हैं।

दरअसल पुरानी पेंशन योजना को बंद करके, नई पेंशन योजना शुरू करना भारत में नवउदारवादी दौर की नीतियों का अहम हिस्सा था। नवउदारवाद की नीति के तहत जिस तरह अन्य जनकल्याणकारी योजनाओं पर कटौती की गई, उसी तरह पेंशन का सीमित अधिकार भी छीन लिया गया। क्योंकि नवउदारवादी तर्क के अनुसार, पेंशन फ़ंड को "ख़ाली/आरक्षित" क्यों रखा जाए, जबकि उसका इस्तेमाल 'म्यूचुअल फ़ंड' या ऐसी ही अन्य स्कीमों में शेयर बाज़ार में निवेश करने से बड़े पूँजीपतियों को फ़ायदा हो सकता है! नवउदारवादी तर्क के अनुसार, पेंशन और अन्य जनकल्याणकारी सुविधाओं को सरकार पर "बोझ" माना जाता है, ना कि सरकार की ज़िम्मेदारी। दूसरी ओर, बड़े पूँजीपतियों को दी जाने वाली सुविधाओं और रियायतों को हमेशा बोझ के बजाय 'प्रोत्साहन' बताया जाता है!

नई पेंशन योजना को एक अवसर के रूप में प्रचारित करते हुए कहा गया कि इससे कर्मचारियों के लिए शेयर बाज़ार आदि में निवेश करके अधिक लाभ कमाया जा सकता है। लेकिन व्यावहारिक रूप से देखा जाए तो इस दावे में कोई सच्चाई नहीं है। जब कर्मचारियों को नई पेंशन योजना के तहत पेंशन मिलने लगी, तो उन्होंने ख़ुद को ठगा हुआ महसूस किया, जिससे 2010 से इसके ख़िलाफ़ संघर्ष तेज़ हो गया। व्यावहारिक रूप से यह देखा गया है कि नई पेंशन योजना के सभी दावों के उलट इस योजना के तहत मिलने वाली पेंशन की राशि पुरानी योजना के तहत देय राशि से काफ़ी कम है। साथ ही, अगर कल शेयर बाज़ार गिर जाता है, तो सभी पेंशन फ़ंडों की भरपाई कौन करेगा? ओ.ई.सी.डी. की रिपोर्ट के अनुसार, पश्चिम में जब 2007-08 का वित्तीय संकट आया, तो विकसित देशों में निजी पेंशन फ़ंड में कुल 5 खरब डॉलर का नुक़सान हुआ, जिसकी कभी किसी कंपनी ने भरपाई नहीं की थी।

पक्की पेंशन दान नहीं, हक़ है!

असल में, एक राज्य द्वारा अपने नागरिकों को दी जाने वाली सामाजिक सुविधाओं का प्रश्न राज्य के अपने नागरिकों के साथ संबंधों का प्रश्न है। आधुनिक राज्य में, जैसा कि कहा जाता है, नागरिकों को समाज में समान भागीदार के रूप में माना जाता है, ना कि अधीनस्थ अंग के रूप में। इसलिए यह राज्य की ज़िम्मेदारी है कि वह अपने नागरिकों की सेवानिवृत्ति के बाद भी उनकी बुनियादी ज़रूरतों का ख़याल रखे। लेकिन मौजूदा पूँजीवादी राज्य में नागरिकों को अपने मूल अधिकारों को लागू करवाने के लिए भी लंबे समय तक संघर्ष करना पड़ा है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत से पेंशन और दूसरे सामाजिक लाभ दुनिया-भर में ट्रेड यूनियन संघर्षों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं, और यह क्रांतिकारी संघर्षों के दबाव में था कि 1880 के दशक में जर्मनी में पहली पेंशन योजना लागू की गई, उसके बाद इसे दूसरे एक दो मुल्कों में लागू किया गया। लेकिन पश्चिम में पेंशन और अन्य सामाजिक लाभों के आंदोलन को समाजवादी सोवियत संघ में लागू सर्वव्यापी पेंशन से एक बड़ा बढ़ावा मिला, जब समाजवादी सरकार ने शुरुआती चरण में पहली बार विकलांगता में और मुख्य कमाने वाले की मृत्यु पर पेंशन शुरू की, और बाद में 1930 के दशक में सभी रोज़गार प्राप्त लोगों के लिए सभी प्रकार की सर्वव्यापी पेंशन पेश की गई थी और इसे 1936 के संविधान के अनुच्छेद 120 में दर्ज करके क़ानूनी रूप दिया गया।

समाजवादी सोवियत संघ के अनुभव और अपने-अपने देशों के मज़बूत ट्रेड यूनियन आंदोलनों के दबाव के कारण ही बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक में, विशेषकर दूसरे विश्व युद्ध के बाद, पेंशन दी जाने लगी। लेकिन पूँजीवादी सरकारों की हर कोशिश रहती कि मज़दूरों, कर्मचारियों के वेतन से एक हिस्सा काटकर पेंशन के लिए संसाधन जुटाए जाएँ (जैसे अमेरिका, इंग्लैंड और फ़्रांस में)। इसके अलावा पेंशन पाने के लिए कई सख्त शर्तें हैं, जैसे सेवानिवृत्ति की उम्र 60 से 65 साल (आज से 50-65 साल पहले जब औसत उम्र कम थी) रखना, तब तक विकलांगता पेंशन नहीं देना, जब तक कि व्यक्ति पूरी तरह से विकलांग ना हो, पेंशन पाने के लिए सेवाओं की उम्र बढ़ाते जाना, मज़दूरों, मुलाजिमों को पेंशन फ़ंड आदि के प्रबंधन से बाहर करना आदि हथकंडे अपनाकर इस सुविधा को छीनने के उपाय लगातार खोजे जाते रहे हैं। इसीलिए मज़दूरों, मुलाजिमों के लिए पेंशन और अन्य सुविधाएँ लागू करवाना हमेशा ही तीखे संघर्षों का विषय रहा है और पिछले चालीस वर्षों में जब से ट्रेड यूनियन आंदोलन कमजोर हुआ है, इस अधिकार पर पूँजीवादी राज्य का हमला भी तेज़ हुआ है। भारत में पिछले तीस-चालीस वर्षों में ठेकेदारी प्रबंध लागू करके पक्की नौकरी को समाप्त करके मज़दूरों-मुलाजिमों के पेंशन के अधिकार को ख़त्म कर दिया गया है, और जो कुछ थोड़ा-बहुत बचा है, उसे भी नई पेंशन योजना जैसी योजनाओं के ज़रिए छीना जा रहा है।

कहने का अर्थ यह है कि पेंशन के अधिकार को कभी भी किसी राज्य द्वारा अपने नागरिकों को दिए गए परोपकार के रूप में नहीं, बल्कि उन्हें नागरिकों के मौलिक अधिकार के रूप में माना गया है। और इसी आधार पर पुरानी या नई पेंशन योजना से भी अहम सवाल यह है कि नागरिकों का यह मूल अधिकार अब तक सिर्फ़ कुछ कर्मचारियों तक ही सीमित क्यों रखा गया है?

सवाल उठना चाहिए था कि आज बहुसंख्य हो चुके असंगठित, ग़ैर सरकारी क्षेत्र के मज़दूरों, मुलाजिमों तक पेंशन का दायरा कैसे बढ़ाया जाए? इसलिए पुरानी पेंशन योजना की बहाली का संघर्ष, पेंशन विस्तार और दूसरी जनकल्याणकारी सुविधाओं के संघर्ष से जुड़ा हुआ है। यह भारत के पूँजीवादी राज्य द्वारा अपनाई जा रही निजीकरण और उदारीकरण की जनविरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ संघर्ष है, यह मज़दूरों, कर्मचारियों का ख़ुद को एक सम्मानित नागरिक के रूप में स्थापित करने का संघर्ष है।